International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.multieducationjournal.com
Volume 1; Issue 2; April 2016; Page No. 58-61

भारत अफगान सम्बन्ध (सन् 1947 से सन् 1989 तक)

डॉ० दिलबाग सिंह बिसला

निर्देषक राजीव गांधी शोध एवं अध्ययन केन्द्र, आर्यनज संस्थान, रतीबाड़, भोपाल

प्रस्तावना

भारत–अफगान सम्बन्ध उतने ही पुराने है जितनी हिमालय की बर्फ या आमू नदी का पानी। कनिष्क और अषोक जितने भारत के है उतने ही अफगानिस्तान के भी। शेरषाह सूरी जितने अफगानिस्तान के हैं, उतने भारत के भी है।[1]

अफगानिस्तान में स्थान–स्थान पर हिन्दू मन्दिर हैं, जो कि वहाँ की मस्जिदों से भी पुराने हैं।[2] भगवान बुद्ध की विविध प्रस्तर प्रतिमाएँ के अवशेष अनेक स्थलों पर पाये जाते हैं। जाहिर है कि भारत और अफगानिस्तान के सम्बन्ध अति प्राचीन हैं और राजनैतिक ही नहीं, सांस्कृतिक भी हैं।[3]

भारत की आजादी तक अफगानिस्तान की सहानुभूति भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के साथ रही। इसका कारण यह भी था कि अनेक पख्तून लोग खान अब्दुल्ला गफ्फार खान के नेतृत्व में, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रुप से भाग ले रहे थे। खास बात यह भी है कि 1947 से पूर्व पाकिस्तान नहीं था, इसलिए भारत और अफगानिस्तान एकदम पड़ौसी थे। इसलिए दोनों के बीच सीधा सम्पर्क था। पाकिस्तान के निर्माण से भारत और अफगानिस्तान को भौगोलिक रुप से एक–दूसरे से दूर हटना पड़ा।

इसलिए स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति का प्रतिपादन और उसका प्रतिपालन करते समय श्री नेहरु ने भारत अफगान मैत्री पर विशेष बल दिया था। परिणामस्वरुप सन् 1947 से आज तक भारत अफगानिस्तान सम्बन्ध मित्रतापूर्ण ही रहे हैं।

भारत और अफगानिस्तान के बीच इस मित्रता के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के अलावा तीन आधार है।

1. पख्तूनिस्ता के प्रश्न पर पाक अफगान मतभेद।
2. गुटनिरपेक्षता की नीति
3. भारत अफगान आर्थिक सम्बन्ध[4]

पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच दो विषयों पर मतभेद रहा हैं। एक तो है दोनों सीमा रेखा 'डूरंड लाइन' और दूसरा है–पख्तून समस्या। ब्रिटिश भारत और अफगानिस्तान के बीच सन् 1893 में सीमा निर्धारण का कार्य हुआ था। इस सीमा रेखा का नाम डूरंड लाइन है। जब तक अग्रेंज भारत में रहे, यही दोनों देशों के बीच सीमा रेखा बनीं रही। इस सीमा रेखा को लेकर पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच वर्षो तक तनाव रहा है। पाकिस्तान सीमा रेखा में कोई परिवर्तन नहीं चाहता था।

तनाव का दूसरा कारण है–पख्तून समस्या। डूरंड रेखा के पूर्वी और भारी संख्या में पठान रहते हैं। मूल रुप से यह लोग अफगान ही हैं, और पष्तो ही उनकी भाषा है। यह पठान पाकिस्तान बनने के विरुद्ध थे। इन्होंने भी भारत की आजादी के लिए लड़ाई लड़ी थी। भारत तो आजाद हो गया, परन्तु पाकिस्तान बन जाने से यह पख्तून भी पाकिस्तान में रहने के लिए विवश हो गए। पाकिस्तान में इन्हें कभी न्याय नहीं मिला।[5] अतः यह लोग भी अपने स्वतन्त्र राज्य की मांग करने लगे। ये पख्तूनिस्तान चाहते थे और पख्तूनिस्तान की मांग के साथ अफगानिस्तान की पूरी सहानुभूति है।

सन् 1960–61 में पख्तूनिस्तान के प्रश्न पर अफगानिस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध इतने कटुतापूर्ण हो गये थे कि दोनों देशों ने राजनयिक सम्बन्ध भी तोड़ लिए। पख्तूनिस्तान के प्रश्न पर भारत की सहानूभूति स्पष्ट रुप से अफगानिस्तान के साथ थी, क्योंकि इससे भारत अफगान मित्रता में वृद्धि हुई और अफगानिस्तान को यह आश्वासन मिला था कि पूर्व में भारत द्वारा पाकिस्तान पर दबाव बना रहने से पाकिस्तान–भारत पर आक्रमण के बारे में नहीं सोचेगा। यहां पर भी दुश्मन का दुश्मन दोस्त वाली बात सिद्ध हुई। दोनों देशों के बीच मैत्री के रचनात्मक आधार भी थे। इनमें से एक आधार था गुटनिरपेक्षता की नीति। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई थी।

सन् 1963 में मोहम्मद दाऊद के त्याग पत्र देने के बाद–मोहम्मद युसुफ अफगानिस्तान के प्रधानमन्त्री बने थे। प्रधानमन्त्री बनने के बाद उन्होंने अपने पहले भाषण में कहा था कि, "सरकार तटस्था, गुटनिरपेक्षता स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय संप्रभुता की अपनी परम्परागत नीति का पालन करेंगी और पारस्परिक सम्मान तथा विश्वास के आधार पर सारे राष्ट्रों और लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को दृढ़ करते हुए शान्ति बनाए रखने में योगदान देगी।" स्पष्ट है कि अफगानिस्तान के लिए तटस्था की नीति 'परम्परागत नीति' है।

भारत और अफगानिस्तान के बीच गुटनिरपेक्षता की नीति मित्रता का ठोस आधार है।

बैलग्रेड, काहिरा और कोलम्बों में गुटनिरपेक्षता देशों के सम्मेलन के अवसर पर अफगानिस्तान और भारत ने सामान्यतः एक जैसे विचार व्यक्त किये है। गुटनिरपेक्षता के कारण पश्चिमी राष्ट्रों के दबाव के उपरान्त भी, अफगानिस्तान ने चीन से मधुर राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्ध बनाए। चीन से विपुल मात्रा में आर्थिक सहायता मिलने के उपरान्त भी अफगानिस्तान कभी उसके दबाव में नहीं आया और भारत–चीन युद्ध के समय तटस्थ रहा। 22 नवम्बर 1963 को चीन अफगान सीमा के सम्बन्ध मे दोनों देशों के बीच एक सन्धि हुई थी। डा. वैदिक के शब्दों में, "सीमा समझौते को चीन इस रुप में सम्पन्न नहीं करा सका था कि उससे भारत के हितों को हानि हो।"[6]

सन् 1965 भारत–पाक युद्ध के समय भी अफगानिस्तान तटस्थ रहा। विशेष रुप से ऐसे समय जब कि संसार के अधिकांश मुस्लिम देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से पाकिस्तान के पक्ष में थे। अफगानिस्तान का तटस्थ रहना भी महत्वपूर्ण था।

भारत–पाक युद्ध के बाद अफगानिस्तान ने ताशकन्द समझौते का भी स्वागत किया। सन् 1965 के बाद सोवियत–अफगान संयुक्त विज्ञप्ति में ताशकन्द भावना की भरपूर प्रशंसा की जाती रही। बंगलादेश की घटनाओं के समय अफगानिस्तान तटस्थ रहते हुए भी इस समस्या के प्रति उदासीन नहीं रहा। सितम्बर 1971 में अफगानिस्तान के बादशाह जहीर शाह ने पोदगोर्नी की आवाज मिलाते हुए चिन्ता व्यक्त की थी तथा 'पूर्वी पाकिस्तान' में शीघ्र ही एक राजनीतिक समाधान' की मांग की थी। बंगलादेश बन जाने के बाद अफगानिस्तान ने उसे मान्यता देने और उसके साथ स्वस्थ सम्बन्ध बनाने में कोई विलम्ब नहीं किया था।

वियतनाम के सम्बन्ध में, अरब इजराइल विवाद के सम्बन्ध में, अफ्रीकी देशों के मुक्ति आन्दोलन के सम्बन्ध में अफगानिस्तान और

भारत के स्वर में कोई अन्तर नहीं रहा। भारत की तरह अफगानिस्तान भी अमेरिका की तुलना में सोवियत रुस के अधिक निकट रहा है।[7]

सन् 1965 के बाद भारत और अफगानिस्तान के बीच पारस्परिक आर्थिक सहयोग मे विशेष वृद्धि हुई। भारत के अनेक तकनीशियनों और विशेषज्ञों को अफगानिस्तान के विभिन्न सरकारी विभागों में काम करने के लिए भेजा गया। काबुल के स्कूलों में पढ़ाने के लिए 15 अध्यापक भेजे गये। सन् 1966 में भारत ने 60 हजार रुपये की लागत से एक 'आइसोटोप केन्द्र' बनाने की घोषणा की थी। जुलाई, 1966 में उपराष्ट्रपति डॉ जाकिर हुसैन ने काबुल की यात्रा की थी और भारत की ओर से 100 बिस्तर वाले एक शिशु अस्पताल का शिलान्यास किया था।

सन् 1967 में अफगानिस्तान के बादशाह जहीर शाह ने भारत की यात्रा की थी और पारस्परिक सहयोग तथा पाकिस्तान में से आवागमन को सुविधा की विशेष कामना की थी। मई 1969 में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी जब काबुल गई तो उस समय भी दोनों देशों के बीच आर्थिक और व्यापारिक समझौते हुए। समझौते के अनुसार दोनों देशों का एक संयुक्त आर्थिक आयोग बना और अफगानिस्तान के कृषि, शिक्षा, प्रशासन, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में भारतीय विशेषज्ञों की भरमार हो गई थी। मई, 1969 में ही राष्ट्रपति वी. वी. गिरि और शिक्षा मन्त्री नुरुल हसन ने भी अफगानिस्तान की यात्रा की थी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि भारत–पाक रेल सम्पर्क फिर से जुड़ जाने से भारत और अफगानिस्तान के आर्थिक सम्बन्ध और भी सुविधाजनक हो गए। इससे भारत दैनिक आवश्यकताओं और उपयोग की वस्तुएँ अफगानिस्तान को सरलता से भेज सकता था, तो अफगानिस्तान के फल और सूखा मेवा भी सरलता से भारत आ सकते थे। दोनों ओर से व्यापार और आर्थिक क्षेत्र के विस्तार के प्रयास हुए।

मित्रता के उपर्युक्त तीन ठोस आधारों के परिणामस्वरुप भारत और अफगानिस्तान में शैक्षिक और सांस्कृतिक सम्पर्क भी विकसित हुये। शिक्षा मन्त्री नुरुल हसन का प्रस्ताव मान लिया गया था और काबुल विश्वविद्यालय में एक 'इंडो–लॉजी विभाग खोल दिया गया था। भारत के सांस्कृतिक दल अफगानिस्तान जाने लगे जहाँ भारतीय नृित्य और गायन को बहुत लोकप्रिय हैं। बोमियान में भगवान बुद्ध की प्रतिमा के संरक्षण का दायित्व भारत के पुरातत्व विभाग ने ले लिया था।

सन् 1973 में अफगानिस्तान में एक असैनिक क्रान्ति हुई। इसमें राजतन्त्र समाप्त हो गया तथा भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोहम्मद दाऊद राष्ट्रपति बने। दाऊद भारत और रुस के मित्र थे। उनके राष्ट्रपति बनने से भारत और अफगानिस्तान के गर्म जोशी के सम्बन्ध स्थापित हुए। मार्च, 1975 में मोहम्मद दाऊद ने भारत की यात्रा की और जुलाई 1976 में कोलम्बो सम्मेलन से पूर्व प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी एक बार फिर अफगानिस्तान गई। एक बार फिर दोनों नेताओं ने परस्पर मित्रता पर बल दिया। ओद्यौगिक और व्यवसायिक सम्बन्धों के विस्तार पर चर्चा की और कोलम्बों सम्मेलन के अवसर पर दोनों देशों के बीच समान दृष्टिकोण अपनाने का वायदा किया। श्रीमती गाँधी की इस यात्रा के दौरान राष्ट्रपति दाऊद ने कहा था, "चाहे कुछ हो जाए, भारत और अफगानिस्तान की मित्रता प्रभावित नहीं होगीं।"

मार्च, 1977 में दिल्ली में कांग्रेस पार्टी उखड़ गई। देश में पहली बार केन्द्र में गैर कांग्रेसी सरकार बनी। जनता सरकार अस्तित्व में आई। परन्तु यह तो स्पष्ट हो गया कि नई सरकार की विदेश नीति पुरानी सरकार से ज्यादा भिन्न नहीं थी। [8] शीघ्र ही विदेश मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने घोषणा की थी कि किया कि नई सरकार ने पड़ौसी देशों के साथ गहरी मित्रता स्थापित करने को प्राथमिकता प्रदान करेगी। इस नीति के अन्तर्गत अन्य देशों के साथ–साथ वे अफगानिस्तान से ही घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में जुट गये। सितम्बर, 1977 में उन्होंने अफगानिस्तान की यात्रा की। इस चार दिवसीय यात्रा में उन्होंने भारत अफगानिस्तान के गहरे सांस्कृतिक सम्बन्धों पर विशेष बल दिया। साथ ही उन्होंने अफगानिस्तान को आवासन दिया था कि भारत अफगानिस्तान में तीन नये औद्योगिक क्षेत्र स्थापित करेगा और इस तरह अफगानिस्तान के आर्थिक विकास में सहायता देगा। [9]

मार्च, 1978 में अफगानिस्तान के राष्ट्रपति दाऊद ने भारत की यात्रा की थी।[10] इस यात्रा के अवसर पर जहाँ अधिक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार–विमर्श किया गया था। वहीं भारत ने अफगानिस्तान को एक लाख टन गेहूँ देना स्वीकार किया था। इसे तथा अन्य सहायता–प्रयोजनों को राष्ट्रपति दाऊद ने 'निस्वार्थ सहायता' का नाम दिया था।[11] जल्दी ही उनकी हत्या कर दी गई।[12]

मोहम्मद तरक्की नये राष्ट्रपति बने और स्वंय साम्यवादियों में सत्ता संघर्ष चलने लगा था। सितम्बर, 1979 में नूर मोहम्मद तरक्की की हत्या कर दी गई और हफीजुल्ला अमीन नए राष्ट्रपति बने। इसके बाद ही अफगानिस्तान में आन्तरिक विद्रोह और तेज हो गया। इस आन्तरिक विद्रोह में बाहरी शक्तियां न केवल रुचि लेने लगीं थी, बल्कि हस्तक्षेप भी करने लगीं थी। [13] दिसम्बर, 1979 को अफगानिस्तान में हजारों रुसी सैनिकों ने विमानों, तोपों व टैंको के साथ प्रवेश किया था। संसार के किसी भी गुटनिरपेक्ष देश पर सोवियत रुस का यह पहला खुला और नग्न आक्रमण था। इस 'अतिक्रमण' का बचाव करते हुए रुस के प्रवक्ताओं ने कहा थ कि रुस को अफगानिस्तान में बुलाया गया है। पहले यह कहा गया कि उन्हें हफीजुल्लाह अमीन ने बुलाया है। बाद में राष्ट्रपति बबरक करमाल ने यह कहना आरम्भ किया था कि नियन्त्रण मैंने दिया था।[14]

उस समय भारत में चौधरी चरण सिहं की सरकार थी। प्रधानमन्त्री चौधरी चरण सिहं ने तत्काल नई दिल्ली स्थित रुसी राजदूत को बुलाया और कहा था कि शीघ्र ही रुसी सेनाएं अफगानिस्तान से हट जानी चाहिए। परन्तु, जनवरी, 1980 में भारत में चरण सिहं की पार्टी की पराजय हुई और श्रीमती गांधी दोबारा प्रधान मन्त्री बनीं। इसके साथ ही अफगानिस्तान के सम्बन्ध में भारत की नीति भी बदल गई।

श्रीमती गांधी का झुकाव पहले से ही रुस की ओर रहा था। वे यह भी जानती थी कि रुस हमारा पड़ोसी ही नहीं, हमारा मित्र भी है। रुस ने सन् 1971 के संकट के समय भारत की सहायता की थी। वास्तव में दक्षिण एशिया में चल रहे शक्ति संघर्ष में, भारत रुस के साथ सम्बन्ध रहा। जनवरी 1980 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष अधिवेशन में भारत ने रुस का बचाव ही किया।[15] भारत के प्रतिनिधि ब्रजेश मिश्रा ने कहा था कि रुस की सेनाएँ अमीन के निमन्त्रण पर अफगानिस्तान में गई हैं।[16] इतना ही नही, महासभा में जब भारी बहुमत से अफगानिस्तान पर रुस की सेनाओं के आक्रमण का प्रस्ताव पास हो रहा था, भारत ने उस मतदान में भाग ही नहीं लिया था।

फ्रांस के राष्ट्रपति गीसकार भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी से मिले तथा अफगानिस्तान समस्या के राजनीतिक समाधान के लिए बातचीत की थी। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव ने भी इस समस्या के शान्तिपूर्ण ढ़ग से समाधान कर महाशक्तियों के संघर्ष को रोकने के लिए अपना योगदान देने के लिए कहा था।[17]

भारत ने निश्चय किया था कि वह सोवियत रुस की निन्दा नहीं करेगा। रुस की निन्दा के किसी अभियान में सम्मिलित भी नहीं होगा। परन्तु रुस का नाम लिए बिना यह आग्रह करता रहेगा, कि अफगानिस्तान से विदेशी सेनाएं हट जानी चाहिएं।[18]

दिसम्बर, 1980 में सोवियत रुस के राष्ट्रपति ब्रेजनेव भारत आए।[19]

यह एक महत्वपूर्ण बात थी। इसका स्पष्ट अर्थ था कि अफगानिस्तान के प्रश्न पर भारत ओर रुस में मतभेद नहीं हैं। इस अवसर पर श्रीमती गान्धी ने संसद को सूचित किया था कि हमने ब्रेजनेव से कहा है कि रुस को अपनी सेनाएँ शीघ्र ही अफगानिस्तान से हटा लेनी चाहिए।[20]

फरवरी, 1981 में नई दिल्ली में गुटनिरपेक्ष देशों के विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ। भारत ने इस बात पर बल दिया कि रुस का नाम न लिया जाए, उसे आक्रमक घोषित न किया जाए परन्तु साथ ही यह भी आग्रह किया जाए कि सभी बाहरी सेनाएँ अफगानिस्तान से हटा ली जाऐं। भारत के आग्रह पर ऐसा प्रस्ताव पारित भी किया गया। इसे भारत की कूटनीतिक सफलता माना गया।

इसी प्रकार, अक्टूबर, 1981 मे आस्ट्रेलिया में हुए राष्ट्रमण्डलीय देशों के राष्ट्रध्यक्षों के सम्मेलन में प्रधानमन्त्री श्रीमती गान्धी के आग्रह पर अफगानिस्तान के प्रश्न पर रुस की निन्दा नहीं की गई। संयुक्त विज्ञप्ति में यह तो कहा गया था कि अफगानिस्तान से भी विदेशी सेनाएं बाहर निकलें तथा अफगान समस्या का राजनैतिक समाधान निकाला जाए, परन्तु उसमें रुस का नाम नहीं लिया गया। मार्च, 1982 में सऊदी अरब की यात्रा पर श्रीमती गान्धी ने शाह खालिद को स्पष्ट रुप से कहा था कि भारत अफगानिस्तान से रुसी फौजों की वापसी चाहता हैं।

मार्च, 1983 में नई दिल्ली में हुए सातवें गुट निरपेक्ष सम्मेलन के अवसर पर भी भारत ने अफगानिस्तान के सम्बन्ध में इसी नीति का पालन किया। भारत के आग्रह पर सम्मेलन के अन्त में जो प्रस्ताव पारित किया गया था उससे सोवियत रूस का नाम लिये बिना यह कहा गया था कि अफगानिस्तान से सभी विदेशी सेनाएं हटा ली जाएं।

सन् 1979–1984 तक अफगान के सम्बन्ध में भारत की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने रेड़ियों प्रसार के भाषण में कहा था कि हम अपने पड़ौसियों व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विरोधा भाव को देख रहे है।[21] श्रीमती इन्दिरा गांधी ने लोकसभा में बोलते हुये भी कहा था कि हम एशिया में बढ़ती महाशक्तियों व दूसरे देशों की दखल अन्दाजी व धमकियों को नकारात्मक ढ़ग से नहीं ले रहे है।

सन् 1985–86 में दोनों देशों के सम्बन्ध सन्तोषजनक रूप से विकसित होते रहे। रूस बारबार यह बात दोहराता रहा, कि बाह्य शक्तियों का अफगान में दबाव घटते ही वह यहा नहीं रहेगा। क्योंकि अमेरिका उस समय पाकिस्तान के माध्यम से अफगान विद्रोही को हथियारों की पूर्ति कर रहा था तथा पाक को भी भारी मात्रा में सैनिक शस्त्र दे रहा था। भारत–अफगान समस्या के राजनीतिक समाधान पर जोर दे रहा था।

संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा में 14 नवम्बर, 1985 को एक प्रस्ताव पारित कर अफगान से विदेशी सेनाएं हटाने का अनुरोध किया गया था। परन्तु भारत सहित अन्य 12 देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया था। फरवरी, 1986 में अमेरीकी राष्ट्रपति रीगन ने अफगान विद्रोहियों को दिये जाने वाली अमेरीकी सैनिक सहायता में वृद्धि करने का निश्चय किया था और उन्हें स्टिंगर विमान भेदी प्रक्षेपास्त्र दिये थे।

मार्च–अप्रैल, 1986 में सोवियत विदेश मंत्री शेवनादजे ने संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष प्रतिनिधी कारवज से कहा था कि सयुंक्त राष्ट्र अफगान समस्या का राजनीतिक हल खोजने के पक्ष में है इसी समय काबूल कार्वोडिज ने सोवियत सेना की वापसी समय तालिका दी।[22] भारत के विदेश मन्त्री मई, 1987 में अफगान की यात्रा पर गए जिसका पाक ने विरोध किया था। भारत ने कहा था कि हम चाहते है कि अफगान से रुसी सेनाएं हट जाए। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वहां कि राजसत्ता पर पाक या अमेरिका का वर्चस्व स्थापित हो। जुलाई में अफगान राष्ट्रपति नजीबुल्ला ने मास्को में गर्वाच्योव के साथ विचार–विर्मश किया। नवम्बर, 1987 में सयुंक्त–राष्ट्र संघ ने सोवियत संघ से कहा था कि वह अफगानिस्तान से सेना हटा ले। ड़ा0 नजीबुल्ला अगले सात वर्षो के लिए अफगानिस्तान के राष्ट्रपति चुने गये। यह चुनाव अफगानिस्तान के परम्परागत लोथा जिरगा अर्थात महासभा ने किया था। उसने अफगानिस्तान के नऐ संविधान को मान्यता प्रदान की थी। इस बीच संयुक्त–राष्ट्र प्रतिनिधि कार्डोविज अफगान समस्या का समाधान करने के लिए काबूल और इस्लामाबाद के बीच चक्कर लगाते रहे। अन्ततः 8 फरवरी, 1988 को गोर्वाच्योव और नजीबुल्ला ने एक साथ यह घोषणा कर दी थी कि सोवियत सेना को अफगानिस्तान से हटा लिया जायेगा। यह प्रकिया मई 1988 में शुरू होकर इस शर्त पर 10 महीनें में पूरी हो जायेगी।[23] अफगानिस्तान और पाकिस्तान की सरकारे यह प्रकिया शुरू होने से दो महीनें के भीतर इसी समझौते पर पहुंच जाये और यदि यह समझौता 15 मार्च, पहले हो जाता है तो सोवियत सेना की वापसी निश्चय तारिख से पहले शुरु हो सकती है। अगले दिन कार्डोविज ने घोषणा की थी कि पाकिस्तान और अफगानिस्तान की सरकारे सोवियत सेना की वापसी की समय तालिका के बारे में सहमत है तथा जिनेवा वार्ता का अलग दौरा 2 मार्च, 1988 को शुरु होगा।

वार्ता के लम्बे दौर के बाद अमेरिका सोवियत संघ पाकिस्तान और अफगानिस्तान ने अप्रैल,1988 में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये थे जिस में सोवियत सेना की वापसी की शर्त तय की गई थी। इससे अनेक क्षेत्रों से यह मांग उठने लगी थी कि अफगानिस्तान के अपदस्थ शासक जाहिर को पुनः अफगानिस्तान सरकार का मुखिया बना दिया जाए। अफगानिस्तान के राष्ट्रपति नजीबुल्ला ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था। इसी समय अमेरिका ने कहा था कि यदि अफगान विद्रोही किसी अस्थायी सरकार का गठन करेगें तो वह उसका समर्थन करेगा।

अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी 7 मई, 1988 को शुरु हो गई थी और यू.एन.ओ. अफगानिस्तान पर यह दबाव डालने लगा था कि वह शाह को वापिस बुलाकर सरकार चलाने की जिम्मेवारी सौंप दे। परन्तु राष्ट्रपति नजीबुल्ला ने इस प्रस्ताव पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी और 15 मई, को उन्होने पाक–अफगान सीमा पर एक विसैन्यकृत क्षेत्र के निर्माण की घोषणा कर दी थी जिसका प्रयोजन अफगान शरणार्थियों को स्वदेश लौटने का अवसर प्रदान करना था। राष्ट्रपति नजीब ने विद्रोहियों को निमन्त्रण दिया था कि वे अफगानिस्तान की मिश्रित सरकार में भाग लें। उसी दिन पहली सोवियत सेना की टुकड़ी अफगानिस्तान से लौट गई।

3 नवम्बर 1987 को संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने अफगान में सम्बन्धित प्रस्ताव में 15 फरवरी, 1989 से पहले सभी रुसी सैनिक हट जाये। परन्तु भारत सहित 11 देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया। सितम्बर, 1989 तक सोवियत सैनिको की वापसी निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार होती रही। परन्तु इसी बीच विद्रोही अफगान छापामारों की गतिविधियां भी तेज होती गई। अन्त में गोर्वाच्योव ने घोषणा की थी कि यदि यह स्थिति बनी रही तो सोवियत सेना की वापसी मध्य नवम्बर, तक सम्भव होगी। इस प्रकार दोनों देशों के सम्बन्ध श्री राजीव गांधी के समय में अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के बावजूद भी अच्छे रहे।

सन्दर्भ

1. वी.पी.वैदिक–"भारतीय विदेश नीति–नये दिशा, संकेत, पृ0 244
2. मथुरा लाल शर्मा–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध–1945 से 1991, पृ0 415
3. नागपाल–"भारत और।विष्व राजनीति," पृ0 415
4. डब्लू. जे. बारण्डज–"वर्ल्ड पोलीटीक्स," पृ0 516
5. दीनानाथ वर्मा–"भारत और विश्व राजनीति," पृ0 450

6. वी.पी.वैदिक–"अफगानिस्तान में सोवियत अमरीकी प्रतिस्पर्धा," पृ0 236–37
7. वहीं, पृ0 231
8. वी.पी.वैदिक–"भारतीय विदेश नीति : नये दिशा संकेत," पृ0 39
9. टाईम्स आफ इण्डिया, 7 सितम्बर, 1977
10. टाईम्स आफ इण्डिया, 4 मार्च, 1978
11. हिन्दूस्तान टाईम्स, 6 मार्च, 1978
12. नवभारत टाईम्स, 29 अप्रैल, 1978
13. हिन्दूस्तान टाईम्स, सितम्बर, 1979
14. प्रावदा, 31 दिसम्बर, 1979
15. टाईम्स आफ इण्डिया, 25 जनवरी, 1980
16. बी.एल.फडीया.–"अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध," पृ0 45
17. टाईम्स आफ इण्डिया, 28 जनवरी, 1980
18. फोरन अफेयर्ज रिकार्डज–जून, 1980, पृ0 420
19. संयुक्त विज्ञप्ति, भारत–अफगान, भारत सरकार, दिसम्बर, 1980
20. लोकसभा डिबेटस, दिसम्बर, 1980
21. टाईमज आफ इण्डिया, 16 जनवरी, 1984
22. न्यूयार्क टाईमज, 5 नवम्बर, 1987
23. फोरन ब्रोडकास्ट इनफोरमेशन सर्विस, सोवियत यूनियन, 8 फरवरी, 1988, पृ0 34